रज़िया सज्जाद ज़हीर 16

जन्म : *15 फ़रवरी, सन् 1917, अजमेर (राजस्थान)*
प्रमुख रचनाएँ : *ज़र्द गुलाब (उर्दू कहानी संग्रह)*
सम्मान : *सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार, उर्दू अकादेमी, उत्तर-प्रदेश, अखिल भारतीय लेखिका संघ अवार्ड*
निधन : *18 दिसंबर, सन् 1979*

हमारे दृढ़ संकल्प ही हमारी ताकत हैं,
हमारा लिखना ही हमें ज़िंदा रखता है।

रज़िया सज्जाद ज़हीर मूलत: उर्दू की कहानी लेखिका हैं। उन्होंने बी.ए. तक की शिक्षा घर पर रहकर ही प्राप्त की। विवाह के बाद उन्होंने इलाहाबाद से उर्दू में एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् 1947 में वे अज़मेर से लखनऊ आईं और वहाँ करामत हुसैन गर्ल्स कॉलेज में पढ़ाने लगीं। सन् 1965 में उनकी नियुक्ति सोवियत सूचना विभाग में हुई।

आधुनिक उर्दू कथा-साहित्य में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने कहानी और उपन्यास दोनों लिखे हैं, उर्दू में बाल-साहित्य की रचना भी की है। मौलिक सर्जन के साथ-साथ उन्होंने कई अन्य भाषाओं से उर्दू में कुछ पुस्तकों के अनुवाद भी किए हैं। रज़िया जी की भाषा सहज, सरल और मुहावरेदार है। उनकी कुछ कहानियाँ देवनागरी में भी लिप्यांतरित हो चुकी हैं।

रज़िया सज्जाद ज़हीर की कहानियों में सामाजिक सद्भाव, धार्मिक सहिष्णुता और आधुनिक संदर्भों में बदलते हुए पारिवारिक मूल्यों को उभारने का सफल प्रयास मिलता है। सामाजिक यथार्थ और मानवीय गुणों का सहज सामंजस्य उनकी कहानियों की विशेषता है। उनकी कहानियों की भाषा सहज, सरल और मुहावरेदार है।

रज़िया सज्जाद ज़हीर की ***नमक*** *शीर्षक कहानी भारत-पाक विभाजन के बाद सरहद के दोनों तरफ़ के विस्थापित पुनर्वासित जनों के दिलों को टटोलती एक मार्मिक कहानी है। दिलों को टटोलने की इस कोशिश में अपने-पराए, देस-परदेस की कई प्रचलित धारणाओं पर सवाल खड़े किए गए हैं। विस्थापित होकर आई सिख बीबी आज भी लाहौर को ही अपना वतन मानती हैं और सौगात के तौर पर वहाँ का नमक लाए जाने की फ़रमाइश करती हैं। कस्टम अधिकारी नमक ले जाने की इजाज़त देते हुए (जिसे ले जाना गैरकानूनी है) देहली को अपना वतन बताता है। इसी तरह भारतीय कस्टम अधिकारी* ***सुनील दासगुप्त*** *का कहना है, "मेरा वतन ढाका है। राष्ट्र-राज्यों की नयी सीमा-रेखाएँ खींची जा चुकी हैं और मज़हबी आधार पर लोग इन रेखाओं के इधर-उधर अपनी जगहें मुकर्रर कर चुके हैं, इसके बावजूद ज़मीन पर खींची गई रेखाएँ उनके अंतर्मन तक नहीं पहुँच पाई हैं। (राजनीतिक यथार्थ के स्तर पर उनके वतन की पहचान बदल चुकी है, किंतु यह उनका हार्दिक यथार्थ नहीं बन पाया है।) एक अनचाही, अप्रीतिकर बाहरी बाध्यता ने उन्हें अपने-अपने जन्म-स्थानों से विस्थापित तो कर दिया है, पर वह उनके दिलों पर कब्ज़ा नहीं कर पाई है। नमक जैसी छोटी-सी चीज़ का सफ़र पहचान के इस हार्दिक पहलू को परत-दर-परत उघाड़ देता है। यह हार्दिक पहलू जब तक सरहद के आर-पार जीवित है, तब तक यह उम्मीद की जा सकती है कि राजनीतिक सरहदें एक दिन बेमानी हो जाएँगी। लाहौर के कस्टम अधिकारी का यह कथन बहुत सारगर्भित है—उनको यह नमक देते वक्त मेरी तरफ़ से कहिएगा कि लाहौर अभी तक उनका वतन है और देहली मेरा, तो बाकी सब रफ़्ता-रफ़्ता ठीक हो जाएगा।*

इसे पढ़ते हुए एक सवाल हमारे मन में ज़रूर उठ सकता है—क्या धर्म-मज़हब के आधार पर नयी सरहदों के आर-पार फेंक दिए गए लोगों की वह पीढ़ी जिनके दिलों में अपनी जन्म-स्थली के प्रति गहरा लगाव है, के खत्म हो जाने पर "रफ़्ता-रफ़्ता ठीक हो जाने" की उम्मीद भी खत्म हो जाएगी? क्या नयी पीढ़ी के आने पर भी यह उम्मीद बनी रहेगी?

नमक

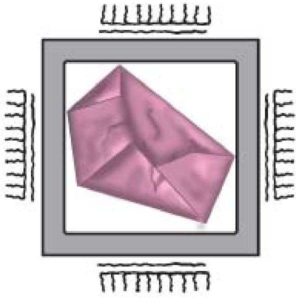

उन सिख बीबी को देखकर सफ़िया हैरान रह गई थी, किस कदर वह उसकी माँ से मिलती थी। वही भारी भरकम जिस्म, छोटी-छोटी चमकदार आँखें, जिनमें नेकी, मुहब्बत और रहमदिली की रोशनी जगमगाया करती थी। चेहरा जैसे कोई खुली हुई किताब। वैसा ही सफ़ेद बारीक मलमल का दुपट्टा जैसा उसकी अम्मा मुहर्रम में ओढ़ा करती थी।

जब सफ़िया ने कई बार उनकी तरफ़ मुहब्बत से देखा तो उन्होंने भी उसके बारे में घर की बहू से पूछा। उन्हें बताया गया कि ये मुसलमान हैं। कल ही सुबह लाहौर जा रही हैं अपने भाइयों से मिलने, जिन्हें इन्होंने कई साल से नहीं देखा। लाहौर का नाम सुनकर वे उठकर सफ़िया के पास आ बैठीं और उसे बताने लगीं कि उनका लाहौर कितना प्यारा शहर है। वहाँ के लोग कैसे खूबसूरत होते हैं, उम्दा खाने और नफ़ीस कपड़ों के शौकीन, सैर-सपाटे के रसिया, ज़िंदादिली की तसवीर।

कीर्तन होता रहा। वे आहिस्ता-आहिस्ता बातें करती रहीं। सफ़िया ने दो-एक बार बीच में पूछा भी,"माता जी, आपको तो यहाँ आए बहुत साल हो गए होंगे।" "हाँ बेटी! जब हिंदुस्तान बना था तभी आए थे। वैसे तो अब यहाँ भी हमारी कोठी बन गई है। बिज़नेस है, सब ठीक ही है, पर लाहौर बहुत याद आता है। हमारा वतन तो जी लाहौर ही है।"

फिर पलकों से कुछ सितारे टूटकर दूधिया आँचल में समा जाते हैं। बात आगे चल पड़ती, मगर घूम-फिरकर फिर उसी जगह पर आ जाती--'साडा लाहौर'!

कीर्तन कोई ग्यारह बजे खत्म हुआ। जब वे प्रसाद हाथ में लिए उठने लगीं और साफ़िया के सलाम के जवाब में दुआएँ देती हुई रुखसत होने लगीं तब सफ़िया ने धीमे से पूछा, "आप लाहौर से कोई सौगात मँगाना चाहें तो मुझे हुक्म दीजिए।"

वे दरवाज़े से लगी खड़ी थीं। हिचकिचाकर बहुत ही आहिस्ता से बोलीं, "अगर ला सको तो थोड़ा-सा लाहौरी नमक लाना।"

पंद्रह दिन यों गुज़रे कि पता ही नहीं चला। जिमखाना की शामें, दोस्तों की मुहब्बत, भाइयों की खातिरदारियाँ–उनका बस न चलता था कि बिछुड़ी हुई परदेसी बहिन के लिए क्या कुछ न कर दें! दोस्तों, अज़ीज़ों की यह हालत कि कोई कुछ लिए आ रहा है, कोई

कुछ। कहाँ रखें, कैसे पैक करें, क्यों कर ले जाएँ–एक समस्या थी। सबसे बड़ी समस्या थी बादामी कागज़ की एक पुड़िया की जिसमें कोई सेर भर लाहौरी नमक था।

सफ़िया का भाई एक बहुत बड़ा पुलिस अफ़सर था। उसने सोचा कि वह ठीक राय दे सकेगा। चुपके से पूछने लगी, "क्यों भैया, नमक ले जा सकते हैं?"

वह हैरान होकर बोला, "नमक? नमक तो नहीं ले जा सकते, गैरकानूनी है और... और नमक का आप क्या करेंगी? आप लोगों के हिस्से में तो हमसे बहुत ज़्यादा नमक आया है।"

वह झुँझला गई, "मैं हिस्से-बखरे की बात नहीं कर रही हूँ, आया होगा। मुझे तो लाहौर का नमक चाहिए, मेरी माँ ने यही मँगवाया है।"

भाई की समझ में कुछ नहीं आया। माँ का क्यों ज़िक्र था, वे तो बँटवारे से पहले ही मर चुकी थीं।

ज़रा नरमी से समझाने के अंदाज़ में बोला, "देखिए बाजी! आपको कस्टम से गुज़रना है और अगर एक भी चीज़ ऐसी-वैसी निकल आई तो आपके सामान की चिंदी-चिंदी बिखेर देंगे कस्टमवाले। कानून जो..."

वह बिगड़कर बोलीं, "निकल आने का क्या मतलब, मैं क्या चोरी से ले जाऊँगी? छिपा के ले जाऊँगी? मैं तो दिखा के, जता के ले जाऊँगी?"

"भई, यह तो आप बहुत ही गलत बात करेंगी।... कानून...।"

"अरे, फिर वही कानून-कानून कहे जाते हो! क्या सब कानून हुकूमत के ही होते हैं, कुछ मुहब्बत, मुरौवत, आदमियत, इंसानियत के नहीं होते? आखिर कस्टमवाले भी इंसान होते हैं, कोई मशीन तो नहीं होते।"

"हाँ, वे मशीन तो नहीं होते, पर मैं आपको यकीन दिलाता हूँ वे शायर भी नहीं होते। उनको तो अपनी ड्यूटी करनी होती हैं।"

"अरे बाबा, तो मैं कब कह रही हूँ कि वह ड्यूटी न करें। एक तोहफ़ा है, वह भी चंद पैसों का, शौक से देख लें, कोई सोना-चाँदी नहीं, स्मगल की हुई चीज़ नहीं, ब्लैक मार्केट का माल नहीं।"

"अब आपसे कौन बहस करे। आप अदीब ठहरीं और सभी अदीबों का दिमाग थोड़ा-सा तो ज़रूर ही घूमा हुआ होता है। वैसे मैं आपको बताए देता हूँ कि आप ले नहीं जा पाएँगी और बदनामी मुफ़्त में हम सबकी भी होगी। आखिर आप कस्टमवालों को कितना जानती हैं?"

उसने गुस्से से जवाब दिया, "कस्टमवालों को जानें या न जानें, पर हम इंसानों को थोड़ा-सा ज़रूर जानते हैं। और रही दिमाग की बात सो अगर सभी लोगों का दिमाग हम अदीबों की तरह घूमा हुआ होता तो यह दुनिया कुछ बेहतर ही जगह हो जाती, भैया।"

मारे गुस्से के उसकी आँखों से आँसू बहने लगे थे। उसका भाई सिर हिलाकर चुप हो गया।

अगले रोज़ दो बजे दिन को उसे रवाना होना था। सुबह के लिए बहुत व्यस्त कार्यक्रम बन चुका था, इसलिए उसे सारी पैकिंग रात ही को करनी थी। कमरे का दरवाज़ा अंदर से बंद करके वह सामान बाँधने लगी। इधर-उधर फैली हुईं चीज़ें धीरे-धीरे सिमटकर सूटकेस और बिस्तरबंद में चली गईं। सिर्फ़ दो चीज़ें रह गईं। एक तो वह छोटी-सी टोकरी जिसमें कीनू थे, एक दोस्त का तोहफ़ा—संतरे और माल्टे को मिलाकर पैदा किया गया फल, माल्टे की तरह रंगीन और मीठा, संतरे की तरह नाज़ुक। और दूसरी थी वह नमक की पुड़िया।

अब तक सफ़िया का गुस्सा उतर चुका था। भावना के स्थान पर बुद्धि धीरे-धीरे उस पर हावी हो रही थी। नमक की पुड़िया ले तो जानी है, पर कैसे? अच्छा, अगर इसे हाथ में ले लें और कस्टमवालों के सामने सबसे पहले इसी को रख दें? लेकिन अगर कस्टमवालों ने न जाने दिया! तो मज़बूरी है, छोड़ देंगे। लेकिन फिर उस वायदे का क्या होगा जो हमने अपनी माँ से किया था? हम अपने को सैयद कहते हैं। फिर वायदा करके झुठलाने के क्या मायने? जान देकर भी वायदा पूरा करना होगा। मगर कैसे? अच्छा, अगर इसे कीनुओं की टोकरी में सबसे नीचे रख लिया जाए तो इतने कीनुओं के ढेर में भला कौन इसे देखेगा? और अगर देख लिया? नहीं जी, फलों की टोकरियाँ तो आते वक्त भी किसी की नहीं देखी जा रही थीं। उधर से केले, इधर से कीनू सब ही ला रहे थे, ले जा रहे थे। यही ठीक है, फिर देखा जाएगा।

उसने कीनू कालीन पर उलट दिए। टोकरी खाली की और नमक की पुड़िया उठाकर टोकरी की तह में रख दी। एक बार झाँककर उसने पुड़िया को देखा और उसे ऐसा महसूस हुआ मानो उसने अपनी किसी प्यारे को कब्र की गहराई में उतार दिया हो! कुछ देर उकड़ूँ बैठी वह पुड़िया को तकती रही और उन कहानियों को याद करती रही जिन्हें वह अपने बचपन में अम्मा से सुना करती थी, जिनमें शहजादा अपनी रान चीरकर हीरा छिपा लेता था और देवों, खौफ़नाक भूतों तथा राक्षसों के सामने से होता हुआ सरहदों से गुज़र जाता था। इस ज़माने में ऐसी कोई तरकीब नहीं हो सकती थी वरना वह अपना दिल चीरकर उसमें यह नमक छिपा लेती। उसने एक आह भरी।

फिर वह कीनुओं को एक-एक करके टोकरी में रखने लगी, पुड़िया के इधर-उधर, आसपास और फिर ऊपर, यहाँ तक कि वह बिलकुल छिप गई। आश्वस्त होकर उसने हाथ झाड़े, सूटकेस पलंग के नीचे खिसकाया, टोकरी उठाकर पलंग के सिरहाने रखी, और लेटकर दोहर ओढ़ ली।

रात को तकरीबन डेढ़ बजे थे। मार्च की सुहानी हवा खिड़की की जाली से आ रही थी। बाहर चाँदनी साफ़ और ठंडी थी। खिड़की के करीब लगा चंपा का एक घना दरख्त

सामने की दीवार पर पत्तियों के अक्स लहका रहा था। कभी किसी तरफ़ से किसी की दबी हुई खाँसी की आहट, दूर से के किसी कुत्ते के भौंकने या रोने की आवाज़, चौकीदार की सीटी और फिर सन्नाटा! यह पाकिस्तान था। यहाँ उसके तीन सगे भाई थे, बेशुमार चाहनेवाले दोस्त थे, बाप की कब्र थी, नन्हे-नन्हे भतीजे-भतीजियाँ थीं जो उससे बड़ी मासूमियत से पूछते, 'फूफ़ीजान, आप हिंदुस्तान में क्यों रहती हैं, जहाँ हम लोग नहीं आ सकते।' उन सबके और सफ़िया के बीच में एक सरहद थी और बहुत ही नोकदार लोहे की छड़ों का जंगला, जो कस्टम कहलाता था।

कल वह लाहौर से चली जाएगी। हो सकता है, सालभर बाद फिर आए। एक साल से पहले तो वह आ भी नहीं सकती थी और यह भी हो सकता था कि अब कभी न आ सके।

उसकी आँखें आहिस्ता-आहिस्ता बंद होने लगीं। फिर उसे एक सफ़ेद दुपट्टे का दूधिया आँचल लहराता दिखाई देने लगा, जिस पर यहाँ-वहाँ सितारे झिलमिला रहे थे—हमें वहाँ से आए तो बहुत दिन हो गए, यहाँ हमारी कोठी भी है, बिज़नेस भी, हम यहाँ बस भी गए हैं, पर हमारा वतन तो जी लाहौर ही है।

फिर दिखा इकबाल का मकबरा, लाहौर का किला, किले के पीछे डूबते हुए सूरज की नारंगी किरणें, आसपास से फैलता-उभरता अँधेरा, उस रंगीन अँधेरे में बहती हुई नरम हवा। उस हवा में रची हुई मौलसिरी की खुशबू और मकबरे की सीढ़ियों पर बैठे हुए दो इंसान—सिर झुकाए चुपचाप, उदास, जैसे दो बेजान परछाइयाँ।

"तो तुम कल चली जाओगी?"

"हाँ!"

"अब कब आओगी?"

"मालूम नहीं, शायद अगले साल। शायद कभी नहीं।"

अचानक उसकी आँखें खुल गईं। शायद उसने मकबरे की सीढ़ियों के नीचे लगी दूब से एक पत्ती तोड़ी थी जिस पर ठंडी ओस जमनी शुरू हो गई थी। हुआ यह था कि नींद में करवट लेते हुए उसका कीनुओं से लबालब भरी टोकरी पर जा पड़ा था—रसीले, ठंडे कीनू जिनको देते वक्त उसके दोस्त ने कहा था, "यह हिंदुस्तान-पाकिस्तान की एकता का मेवा है।"

सफ़िया फ़र्स्ट क्लास के वेटिंग रूम में बैठी थी। देहली तक का किराया उसके भाई ने दिया था। वह हाथ में टिकट दबाए वेटिंग रूम के बाहर प्लेटफार्म पर टहल रहा था।

वह अंदर बैठी चाय की प्याली हाथ में लिए कीनुओं की टोकरी पर निगाहें जमाए यह सोच रही थी कि आसपास, इधर-उधर इतने लोग हैं, लेकिन सिर्फ़ वही जानती है कि टोकरी की तह में कीनुओं के नीचे नमक की पुड़िया है।

जब उसका सामान कस्टम पर जाँच के लिए बाहर निकाला जाने लगा तो उसे एक झिरझिरी-सी आई और एकदम से उसने फ़ैसला किया कि मुहब्बत का यह तोहफ़ा चोरी से नहीं जाएगा, नमक कस्टमवालों को दिखाएगी वह। उसने जल्दी से पुड़िया निकाली और हैंडबैग में रख ली, जिसमें उसका पैसों का पर्स और पासपोर्ट आदि थे। जब सामान कस्टम से होकर रेल की तरफ़ चला तो वह एक कस्टम अफ़सर की तरफ़ बढ़ी। ज़्यादातर मेज़ें खाली हो चुकी थीं। एक-दो पर इक्का-दुक्का सामान रखा था। वही एक साहब खड़े थे-लंबा कद, दुबला-पतला जिस्म, खिचड़ी बाल, आँखों पर ऐनक। वे कस्टम अफ़सर की वर्दी पहने तो थे मगर उन पर वह कुछ जँच नहीं रही थी। सफ़िया कुछ हिचकिचाकर बोली, "मैं आपसे कुछ पूछना चाहती हूँ। "

उन्होंने नज़र भरकर उसे गौर से देखा। बोले, "फ़रमाइए।"

उनके लहजे ने सफ़िया की हिम्मत बढ़ा दी, "आप...आप कहाँ के रहने वाले हैं?"

उन्होंने कुछ हैरान होकर उसे फिर गौर से देखा, "मेरा वतन देहली है, आप भी तो हमारी ही तरफ़ की मालूम होती हैं, अपने अजीज़ों से मिलने आई होंगी।"

"जी हाँ। मैं लखनऊ की हूँ। अपने भाइयों से मिलने आई थी। वे लोग इधर आ गए हैं। आपको...आपको भी तो शायद इधर आए-?"

"जी, जब पाकिस्तान बना था तभी आए थे, मगर हमारा वतन तो देहली ही है।"

सफ़िया ने हैंडबैग मेज़ पर रख दिया और नमक की पुड़िया निकालकर उनके सामने रख दी और फिर आहिस्ता-आहिस्ता रुक-रुक कर उनको सब कुछ बता दिया।

उन्होंने पुड़िया को धीरे से अपनी तरफ़ सरकाना शुरू किया। जब सफ़िया की बात खत्म हो गई तब उन्होंने पुड़िया को दोनों हाथों में उठाया, अच्छी तरह लपेटा और खुद सफ़िया के बैग में रख दिया। बैग साफ़िया को देते हुए बोले, "मुहब्बत तो कस्टम से इस तरह गुज़र जाती है कि कानून हैरान रह जाता है।"

वह चलने लगी तो वे भी खड़े हो गए और कहने लगे, "जामा मस्जिद की सीढ़ियों को मेरा सलाम कहिएगा और उन खातून को यह नमक देते वक्त मेरी तरफ़ से कहिएगा कि लाहौर अभी तक उनका वतन है और देहली मेरा, तो बाकी सब रफ्ता-रफ्ता ठीक हो जाएगा।"

सफ़िया कस्टम के जंगले से निकलकर दूसरे प्लेटफ़ार्म पर आ गई और वे वहीं खड़े रहे।

प्लेटफार्म पर उसके बहुत-से दोस्त, भाई रिश्तेदार थे, हसरत भरी नज़रों, बहते हुए आँसुओं, ठंडी साँसों और भिचे हुए होठों को बीच में से काटती हुई रेल सरहद की तरफ बढ़ी। अटारी में पाकिस्तानी पुलिस उतरी, हिंदुस्तानी पुलिस सवार हुई। कुछ समझ में नहीं आता था कि कहाँ से लाहौर खत्म हुआ और किस जगह से अमृतसर शुरू हो गया। एक

ज़मीन थी, एक ज़बान थी, एक-सी सूरतें और लिबास, एक-सा लबोलहजा, और अंदाज़ थे, गालियाँ भी एक ही-सी थीं जिनसे दोनों बड़े प्यार से एक-दूसरे को नवाज़ रहे थे। बस मुश्किल सिर्फ़ इतनी थी कि भरी हुई बंदूकें दोनों के हाथों में थीं।

अमृतसर में कस्टम वाले फ़र्स्ट क्लास वालों के सामान की जाँच उनके डिब्बे के सामने ही कर रहे थे। सफ़िया का सारा सामान देखा जा चुका तो वह उन नौजवान कस्टम अफ़सर की ओर बढ़ी जो बातचीत और सूरत से बंगाली लगते थे, "देखिए, मेरे पास नमक है, थोड़ा-सा।"

फिर उसने हैंडबैग खोला और वह पुड़िया उनकी तरफ़ बढ़ाते हुए, अटकते, झिझकते, हिचकिचाते हुए उनको सब-कुछ कह सुनाया। उन्होंने सिर झुका लिया था, सुनते रहे, बीच-बीच में सिर उठाते, गौर से उसे देखते, फिर सुनने लगते। बात पूरी हो गई तो उन्होंने एक बार फिर सफ़िया को ऊपर से नीचे तक देखा, धीरे से बोले, "इधर आइए ज़रा!"

चलते-चलते उन्होंने एक-दूसरे से कहा, "इनके सामान का ध्यान रखिएगा।"

प्लेटफ़ार्म के सिरे पर एक कमरा था। वे उसके अंदर घुसे। सफ़िया दाखिल होते हिचकिचाई। वे मुसकराकर बोले, "आइए, आइए न!"

जेब से रूमाल निकालकर उन्होंने कुर्सी को झाड़ा और बोले, "बैठिए।"

सफ़िया ने पुड़िया और बैग को मेज पर रख दिया। बाहर की तरफ़ झाँककर उन्होंने एक पुलिस वाले को इशारा किया। सफ़िया के पैर तले की ज़मीन खिसकने लगी—अब क्या होगा!

"दो चाय लाओ, अच्छी वाली।" पुलिसवाला सफ़िया को घूरता हुआ चला गया।

फिर उन्होंने मेज़ की दराज़ खींची और उसमें अंदर दूर तक हाथ डालकर एक किताब निकाली। किताब को सफ़िया के सामने रखकर उन्होंने पहला सफ़ा खोल दिया। बाईं ओर नज़रुल इस्लाम की तसवीर थी और टाइटल वाले सफ़े पर अंग्रेज़ी के कुछ धुँधले शब्द थे—"शमसुलइसलाम की तरफ़ से सुनील दास गुप्त को प्यार के साथ, ढाका 1946"

"तो आप क्या ईस्ट बंगाल के हैं?"

"हाँ, मेरा वतन ढाका है।" उन्होंने बड़े फ़ख्र से जवाब दिया।

"तो आप यहाँ कब आए?"

"जब डिवीज़न हुआ तभी आए, मगर हमारा वतन ढाका है, मैं तो कोई बारह-तेरह साल का था। पर नज़रुल और टैगोर को तो हम लोग बचपन से पढ़ते थे। जिस दिन हम रात यहाँ आ रहे थे उसके ठीक एक वर्ष पहले मेरे सबसे पुराने, सबसे प्यारे, बचपन के दोस्त ने मुझे यह किताब दी थी। उस दिन मेरी सालगिरह थी—फिर हम कलकत्ता रहे, पढ़े, नौकरी भी मिल गई, पर हम वतन आते-जाते थे।"

"वतन?" सफ़िया ने ज़रा हैरान होकर पूछा।

"मैंने आपसे कहा न कि मेरा वतन ढाका है।"–उन्होंने ज़रा बुरा मानकर कहा।

"हाँ-हाँ, ठीक है। ठीक है।" सफ़िया जल्दी से बोली।

"तो पहले तो बस इधर ही कस्टम था, अब उधर भी कुछ गोलमाल हो गया है।"

उन्होंने चाय की प्याली सफ़िया की तरफ़ खिसकाई और खुद एक बड़ा-सा घूँट भरकर बोले, "वैसे तो डाभ कलकत्ता में भी होता है जैसे नमक यहाँ भी होता है, पर हमारे यहाँ के डाभ की क्या बात है! हमारी ज़मीन, हमारे पानी का मज़ा ही कुछ और है!"

उठते वक्त उन्होंने पुड़िया सफ़िया के बैग में रख दी और खुद उस बैग को उठाकर आगे-आगे चलने लगे; सफ़िया ने उनके पीछे चलना शुरू किया।

जब सफ़िया अमृतसर के पुल पर चढ़ रही थी तब पुल की सबसे निचली सीढ़ी के पास वे सिर झुकाए चुपचाप खड़े थे। सफ़िया सोचती जा रही थी किसका वतन कहाँ है–वह जो कस्टम के इस तरफ़ है या उस तरफ़!

अभ्यास

पाठ के साथ

1. सफ़िया के भाई ने नमक की पुड़िया ले जाने से क्यों मना कर दिया?
2. नमक की पुड़िया ले जाने के संबंध में सफ़िया के मन में क्या द्वंद्व था?
3. जब सफ़िया अमृतसर पुल पर चढ़ रही थी तो कस्टम ऑफ़िसर निचली सीढ़ी के पास सिर झुकाए चुपचाप क्यों खड़े थे?
4. ***लाहौर अभी तक उनका वतन है*** और ***देहली मेरा*** या ***मेरा वतन ढाका है*** जैसे उद्‌गार किस सामाजिक यथार्थ का संकेत करते हैं।
5. नमक ले जाने के बारे में सफ़िया के मन में उठे द्वंद्वों के आधार पर उसकी चारित्रिक विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।
6. ***मानचित्र पर एक लकीर खींच देने भर से ज़मीन और जनता बँट नहीं जाती है–*** उचित तर्कों व उदाहरणों के ज़रिये इसकी पुष्टि करें।
7. ***नमक*** कहानी में भारत व पाक की जनता के आरोपित भेदभावों के बीच मुहब्बत का नमकीन स्वाद घुला हुआ है, कैसे?

क्यों कहा गया?

1. क्या सब कानून हुकूमत के ही होते हैं, कुछ मुहब्बत, मुरौवत, आदमियत, इंसानियत के नहीं होते?
2. भावना के स्थान पर बुद्धि धीरे-धीरे उस पर हावी हो रही थी।
3. मुहब्बत तो कस्टम से इस तरह गुज़र जाती है कि कानून हैरान रह जाता है।
4. हमारी ज़मीन हमारे पानी का मज़ा ही कुछ और है!

समझाइए तो ज़रा

1. फिर पलकों से कुछ सितारे टूटकर दूधिया आँचल में समा जाते हैं।
2. किसका वतन कहाँ है– वह जो कस्टम के इस तरफ़ है या उस तरफ़।

पाठ के आसपास

1. 'नमक' कहानी में हिंदुस्तान-पाकिस्तान में रहने वाले लोगों की भावनाओं, संवेदनाओं को उभारा गया है। वर्तमान संदर्भ में इन संवेदनाओं की स्थिति को तर्क सहित स्पष्ट कीजिए।
2. सफ़िया की मन:स्थिति को कहानी में एक विशिष्ट संदर्भ में अलग तरह से स्पष्ट किया गया है। अगर आप सफ़िया की जगह होते/होतीं तो क्या आपकी मन:स्थिति भी वैसी ही होती? स्पष्ट कीजिए।
3. भारत-पाकिस्तान के आपसी संबंधों को सुधारने के लिए दोनों सरकारें प्रयासरत हैं। व्यक्तिगत तौर पर आप इसमें क्या योगदान दे सकते/सकती हैं?
4. लेखिका ने विभाजन से उपजी विस्थापन की समस्या का चित्रण करते हुए सफ़िया व सिख बीबी के माध्यम से यह भी परोक्ष रूप से संकेत किया है कि इसमें भी विवाह की रीति के कारण स्त्री सबसे अधिक विस्थापित है। क्या आप इससे सहमत हैं?
5. विभाजन के अनेक स्वरूपों में बँटी जनता को मिलाने की अनेक भूमियाँ हो सकती हैं–***रक्त संबंध, विज्ञान, साहित्य व कला।*** इनमें से कौन सबसे ताकतवर है और क्यों?

आपकी राय

मान लीजिए आप अपने मित्र के पास विदेश जा रहे/रही हैं। आप सौगात के तौर पर भारत की कौन-सी चीज़ ले जाना पसंद करेंगे/करेंगी और क्यों?

भाषा की बात

1. नीचे दिए गए वाक्यों को ध्यान से पढ़िए—
   (क) हमारा वतन तो जी लाहौर ही है।
   (ख) क्या सब कानून हुकूमत के ही होते हैं?
   सामान्यत: 'ही' निपात का प्रयोग किसी बात पर बल देने के लिए किया जाता है। ऊपर दिए गए दोनों वाक्यों में 'ही' के प्रयोग से अर्थ में क्या परिवर्तन आया है? स्पष्ट कीजिए। **'ही'** का प्रयोग करते हुए दोनों तरह के अर्थ वाले पाँच-पाँच वाक्य बनाइए।
2. नीचे दिए गए शब्दों के हिंदी रूप लिखिए—
   मुरौवत, आदमियत, अदीब, साडा, मायने, सरहद, अक्स, लबोलहजा, नफीस
3. ***पंद्रह दिन यों गुज़रे कि पता ही नहीं चला***— वाक्य को ध्यान से पढ़िए और इसी प्रकार के (यों, कि, ही से युक्त पाँच वाक्य बनाइए।)

सृजन के क्षण

'नमक' कहानी को लेखक ने अपने नज़रिये से अन्य पुरुष शैली में लिखा है। आप सफ़िया की नज़र से/ उत्तम पुरुष शैली में इस कहानी को अपने शब्दों में कहें।

इन्हें भी जानें

1. मुहर्रम— इस्लाम धर्म के अनुसार साल का पहला महीना, जिसकी दसवीं तारीख को इमाम हुसैन शहीद हुए।
2. सैयद— मुसलमानों के चौथे खलीफ़ा ***अली*** के वंशजों को सैयद कहा जाता है।
3. इकबाल— ***सारे जहाँ से अच्छा*** के गीतकार
4. नज़रुल इस्लाम— बांग्ला के क्रांतिकारी कवि
5. शमसुल इस्लाम— बांग्ला देश के प्रसिद्ध कवि
6. इस कहानी को पढ़ते हुए कई फ़िल्म, कई रचनाएँ, कई गाने आपके ज़ेहन में आए होंगे। उनकी सूची बनाइए किन्हीं दो (फ़िल्म और रचना) की विशेषता को लिखिए। आपकी सुविधा के लिए कुछ नाम दिए जा रहे हैं।

फिल्में	**रचनाएँ**
1947 अर्थ	तमस (उपन्यास – **भीष्म साहनी**)
मम्मो	खोल दो (कहानी – **मंटो**)

ट्रेन टु पाकिस्तान	ज़िंदगीनामा (उपन्यास – **कृष्णा सोबती**)
गदर	पिंजर (उपन्यास – **अमृता प्रीतम**)
खामोश पानी	झूठा सच (उपन्यास – **यशपाल**)
हिना	मलबे का मालिक (कहानी – **मोहन राकेश**)
वीर ज़ारा	पेशावर एक्सप्रेस (कविता – **कुमार विकल**)

7. सरहद और मज़हब के संदर्भ में इसे देखें–

> **तू हिंदू बनेगा न मुसलमान बनेगा,**
> **इंसान की औलाद है, इंसान बनेगा।**
> **मालिक ने हर इंसान को इंसान बनाया,**
> **हमने उसे हिंदू या मुसलमान बनाया।**
> **कुदरत ने तो बख्शी थी हमें एक ही धरती,**
> **हमने कहीं भारत कहीं, ईरान बनाया॥'**
> **जो तोड़ दे हर बंद वो तूफ़ान बनेगा।**
> **इंसान की औलाद है इंसान बनेगा।**
>
> ***– फ़िल्म: धूल का फूल, गीतकार: साहिर लुधियानवी***

शब्द-छवि
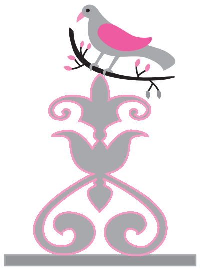
उम्दा	-	अच्छा
नफ़ीस	-	सुरुचिपूर्ण
रुखसत	-	विदा
साडा	-	हमारा
हिस्से-बखरे	-	बँटवारा
मुरौवत	-	संकोच
अदीब	-	साहित्य
लबोलहजा	-	बोलचाल का तरीका
नवाज़	-	सम्मानित करना
सौगात	-	भेंट
अजीज़	-	प्रिय
बाजी	-	दीदी
दोहर	-	कपड़े को दोहरा कर सिली गई चादर, लिहाफ़